IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

"संगीत जीवी जातियों का लोक संगीत के क्षेत्र में योगदान विशेषकर बीकानेर के सन्दर्भ में"

नीतू गुप्ता(Neetu Gupta)
एसोसियेट प्रोफेसर (संगीत विभाग)
दयालबाग शिक्षण संस्थान,
दयालबाग, आगरा–282005

राजस्थान की लोक संस्कृति अत्यन्त समृद्ध है। बीकानेर, राजस्थान क्षेत्र के अन्तर्गत महलों, मन्दिरों, हवेलियों, राज–रजवाड़ों, जागीरदारों और दूर–दूर तक फैले रेगिस्थान का प्रदेश तो है ही, साथ ही इस प्रदेश को आलोकित करने वाले लोकगीत, लोक वाद्य, लोक कलाकार, लोकसंगीत आदि से भी समृद्ध रहा है। बीकानेर आज भी इस गरिमा को बनाए हुए है।

बीकानेर के माँड गायन का विश्व में अपना अलग ही स्थान है। जहाँ एक ओर पद्मश्री अल्लाह जिलाई बाई ने मांड गायन को एक अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है वहीं भंवरी देवी, स्व0 सोना बाई, अब्दुल गनी, जमाली बाई, ऐमना बाई इत्यादि संगीत जीवी जातियों (कलाकारों) ने भी लोकसंगीत के प्रचार–प्रसार में अपनी महती भूमिका निभाई है।

डॉ0 मुरारी शर्मा जी के अनुसार माँड एक लोकगायन शैली है। माँड गायकी राजा–महाराजाओं के समय से निकली सामन्त वर्ग में ही इस शैली को आश्रय मिला और यह शैली खूब फली फूली। सामन्तों एवं राजा–महाराजाओं से जुड़ी होने के कारण इसे प्रमुख रूप से राजदरबारों, महफिलों में अधिक गाया जाता था। राजा–महाराजाओं के सम्मान में ढोला, दमामी, ढाढी आदि परम्परागत जातियाँ इसे सजा–सँवार कर प्रस्तुत करती थी। राजा–महाराजाओं के पास पर्याप्त धन होने के कारण उन्हें सम्मान देने वाली सभी जातियों को वे पनाह देते थे। ये लोकगायक पेशेवर होते थे। इनकी आजीविका

गायन–वादन पर ही निर्भर रहती थी। ये जातियाँ राजघरानों पर आश्रित होने के कारण उनके मनोरंजन, मंगलकामना एवं विजय के अवसर पर राजा–महाराजाओं को प्रसन्न करने का हर सफल प्रयास करती थी। इनका यही उद्देश्य होता है कि जब भी कोई अतिथि (मेहमान) आता तो उसके स्वागत में माँड गाकर ये उनका आदर सत्कार किया करते थे, जिससे राजा–महाराजाओं का सम्मान और अधिक बढ़ता था। इनों राजा–महाराजाओं की प्रसन्नता स्वरूप उपहार भी मिलता था।

समय परिवर्तन के साथ ही ये जातियाँ राजदरबारों एवं रजवाड़े की चार दीवारी तक सीमित न रहकर, पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परम्परा के रूप में आज भी जन–जन को आन्नदित करने में सक्षम रही है। इन कलाकारों के बदौलत ही बीकानेर की यह विशेष गायकी आज राजस्थान ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत एवं विदेशों में भी गाई–बजाई जाती है।

इन संगीत जीवी जातियों एवं लोक कलाकारों द्वारा केसरिया बालम, मामूळ, पणिहारी, गोरबन्द, पीपली आदि रजवाड़ी (माँड) गीत के रूप में आज भी संजोये हुए हैं।

''ये समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से भी सम्भवतया बहुत महत्वपूर्ण है कि अन्ततः किस प्रकार जातीय परम्पराओं के साथ ही लोक संगीत का यह पक्ष उत्पन्न हुआ और आर्थिक रूप से अपने इसी कार्य (संगीत) पर निर्भर रह सका। इन जातियों ने राजस्थानी लोक संगीत को सुरक्षित रखने में सर्वाधिक सफलता भी प्राप्त की।''

लोकगीतों के संरक्षण में इन जातियों का महती योगदान रहा है। ''पारम्परिक भाषा में ये जातियाँ ढाढ़ी, ढोली, नक्कारची, भाट, राव, माण्ड, मिरासी, राणा, दमामी तथा कलावन्त, भोपे, कामड़, हुडकल, जोगी आदि हैं।''

बीकानेर की कुछ संगीत जीवी जातियों का योगदान नीचे दिया जा रहा है। ''आठवीं से चौदहवीं शताब्दी तक रास, चर्चरी, फागू, धवल मंगल आदि गायन एवं नृत्य जैसी शैलियाँ जनसाधारण में प्रचलित रही हैं।''

राजस्थान, गुजरात और सिन्ध में धवल गीतों को गाए जाने की परम्परा थी। धवल एक प्रकार का मांगलिक गीत होता था जो अनेक रागों में गाया जाता था। 'हेमचन्द्राचार्य' के 'छन्दोऽनुशासन' में धवल के कई भेद बताए हैं जैसे श्रीधवल, यशोधवल, कीर्तिधवल, गुणधवल, भ्रमर धवल, अमर धवल, उत्साह धवल, दोधक धवल आदि गाने वाले राठौड़ राजाओं (जोधपुर, बीकानेर) के आश्रित होते थे। आगे चलकर यहीं धवल गाने वालों की एक जाति बन गई, जो धवला नाम से प्रचलित हुई। युद्ध के अवसर पर सेना के आगे नगारा इसी जाति के लोगों द्वारा बजाया जाता था। धवला (रण धवल) बहुत ही सम्मान एवं प्रतिष्ठा सूचक व्यक्ति होते थे। इनके द्वारा नगाड़ा बजाना प्रतिष्ठित कार्य के रूप में माना जाता था। धवला जाति क्षत्रिय राजपूत कुल से उत्पन्न होते थे। शासकों के महलों में प्रवेश द्वार पर ढोल व नगारा बजाने का काम धवला जाति द्वारा ही सम्पन्न होता था। मंगलगीत तथा नृत्य करने वाले को मंगलधवल कहते थे तथा युद्ध में नगाड़ा बजाने वालों को रणधवल कहते थे।

ढोली :– ढोली, बीकानेर की व्यावसायिक गायक जाति है जो कि विवाह–शादी और पुत्र जन्मोत्सव आदि मांगलिक अवसरों पर गीत गाने वाली होती है। इस जाति की ढोल बजाने में निपुणता होने के कारण ये ढोली कहलाए। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, सुनार, दर्जी आदि जातियाँ इनकी यजमान होती हैं अर्थात् ये लोग इन्हीं से ही माँगकर खाते हैं।

इस जाति के लोग हारमोनियम, ढोल अथवा ढोलक के साथ बड़े अच्छे गीत गाते हैं। 'सीताराम लालस जी' के अनुसार वर्ण–व्यवस्था के अनुकूल ढोली भी अपना आदि सम्बन्ध शिव–पार्वती से बताते हैं। 'ढोली' अपना जन्म गन्धर्वों से भी मानते हैं।

परम्परागत गीत गाने वाले इन गायकों का लोकगीत गायन में अपना एक अलग ही अनूठा अन्दाज़ है। ढीली जाति के गायन में जहाँ एक ओर लौकिकता के दर्शन होते हैं तो कहीं–कहीं शास्त्रीयता का भी सहज भाव प्राप्त होता है। ढोलियों की स्त्रियाँ जो पुरूषों के साथ गाती हैं वे 'ढोलणियाँ' कहलाती हैं। ढोलणियों के गीत लम्बे और सुरीले होते हैं। 'ढोलणियाँ' ढोल तथा ढोलक दोनों के साथ ही गाती हैं।

औरंगजेब के समय में इस जाति के लोगों ने मुस्लिम धर्म स्वीकार किया उन्हें मुस्लिम ढोली के नाम से जाना जाता है परन्तु मुस्लिम एवं हिन्दु ढोली की संस्कृति में कोई विभिन्नता प्राप्त नहीं होती है। बीकानेर में इन ढोलियों को दमामी कहते हैं। यहाँ के लोगों में यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है कि ''ढोलियों रे अठै ब्याव तो गीता री कोई कमी अर्थात ढोलियों के घर पर शादी है तो गीतों की क्या कमी रह सकती है।''

पिछले 15–20 वर्षों से इस जाति का रूझान शिक्षा की ओर भी गया। वर्तमान में कई ढोली राजकीय नौकरियाँ भी करते हैं।

भगतण (साध) :– भगतण, नाच–गाकर जीविका चलाने वाली वैश्याओं के रूप जानी जाती थी। वैसे तो मध्यकाल में मन्दिरों में गायन करने वाली भगतण एवं अन्य स्थानों पर नृत्य करने वाली वैश्याएं कहलाती थीं। ऐसा कहा जाता है कि साधु समाज की कन्याओं का विवाह जब उनके समाज में नहीं हो पाता, तो आगे चलकर उन्हीं से भगतण वर्ग बना। इस वर्ग के पुरूष भगत कहलाते थे। ये वैष्णव धर्म को मानने वाले होते थे। वर्तमान में यह जाति लुप्त प्रायः है।

जोगी :– योगी शब्द से जोगी बना है।जोगी जाति के लोग गुरू गोरखनाथ जी के अनुयायी होते हैं। बीकानेर में नाथ पंथी लोग भरथरी, गोपीचन्द तथा शिवजी आदि के ब्यावलो जैसे प्रबन्ध गीतों को चातुर्मास में गा–गा कर सुनाते हैं। इन गीतों को सारंगी वाद्य की संगत के साथ गाते हैं। इनकी सारंगी छोटी होती है, इसलिए ही ये जोगियों की सारंगी कहलाती हैं। इनमें से कुछ लोग 'निहालदे सुलतान' के पावड़े गाते हैं तो कुछ निर्गुणी भजन, सबद आदि भी गाते हैं।

बैरागी :– बैरागी साधु प्रवृत्ति के लोग होते हैं जो सगुण भक्ति के भजन गाकर अपनी आजीविका चलाते हैं। ये भगवा वस्त्र धारण करते हैं। अपनी आजीविका के लिए गायन को ही व्यवसाय के रूप में अपनाया। राजस्थान में रसधारी नृत्य–नाट्यों में बैरागी जाति के लोग कुशल माने जाते हैं।

नट :– राजस्थान में तीन प्रकार के नट जातियाँ प्राप्त होती हैं। प्रथम वे जो रस्सी पर चलते हैं। शारीरिक व्यायाम के चमत्कार दिखाते हैं। द्वितीय वे जो अभिनय से जनता को रिझाने का प्रयास करते हैं। तृतीय कठपुतली नचाने का काम करते हैं। बीकानेर में इनका तीसरा प्रकार विशेष रूप से पाया जाता है। ये घुमन्तु कठपुतली कलाकार वर्तमान में देश के अनेक बड़े–बड़े नगरों में अपनी आजीविका के लिए प्रयास करते रहते हैं। ये अपने यजमानों के यहाँ शादी के अवसर पर ढोल, तुरही आदि वाद्य भी बजाते रहे हैं। इनकी स्त्रियाँ भी गाने तथा कठपुतली नचाने में दक्ष होती है। कठपुतलियों को नचाने वाले नट, कला मर्मज्ञ होते हैं। इन्हें ताल एवं सुर ज्ञान के साथ ही नृत्य कला का भी ज्ञान होता है। गीतों के साथ ढोलक गति तथा पुतलियों के साथ प्रयुक्त होने वाली कथा, हास्य विनोद की प्रवृत्ति से प्रकट होता है कि नटों की यह जाति कला–निपुण होती है। कठपुतलियों का प्रदर्शन मनोरंजक होने के साथ–साथ शिक्षाप्रद व सामाजिक कुरीतियों को दूर करने वाली होती है।

''बीकानेर में दस्ताने वाली कठपुतली का प्रदर्शन 1994 से ठाकुर दास जी स्वामी द्वारा करवाया जा रहा है। ये कठपुतली नचाने के साथ–साथ पशु पक्षियों की आवाजों की नकल करते हैं, गीत गाते हैं, गीत थीम के अनुसार गाए जाते हैं गीत मुख्य रूप से समाज सुधारक आदि विषयों पर आधारित होते हैं।'' जैसे–

मत पीवो सा, मत पीवो सा,

''मत पीवो म्हारा छैल तम्बाखू मत पीवो सा।

राणा :– युद्ध का नगारा (धूंसा) बजाने के कारण ये राणा कहलाए। मुसलमान मिरासी भी नगारा बजाने के कारण राणा कहलाए हैं। राणा गाने बजाने का भी काम करते हैं। ये राजपूतों के जैसा ही जीवन बिताते हैं। शेखावटी के प्रसिद्ध ख्याल लेखक और अभिनेता स्व0 श्री नानू राणा इसी जाति के हैं।

कथिक :– कथिक कान्य कुब्ज (कनौजिये) ब्राह्मण कुल से माने जाते हैं। बीकानेर राज्य की धवला (नक्कारची) समाज से इनका विशेष सम्बन्ध रहा है। प्रारम्भ में ब्राह्मणों ने ही नृत्य कला को अपनाया। इसी से कथिक समाज बना। कलान्तर में धवलाओं ने इस नृत्य कला को उन्नत कर कथक नाम से समुदाय बना लिया है। ''कथिक जाति के भैरव प्रसाद जी के अनुसार बीकानेर संभाग में शोभासर, हरासर आदि गाँवों में मुख्यतः कथिक समाज के लोग रहते हैं। यह भी मानना है कि कथक नृत्य में जो विभिन्न रूप है वह यहीं की देन है।'' जिसका उल्लेख डॉ0 मुरारी शर्मा की पुस्तक ''हिन्दुस्तानी संगीत को बीकानेर का अवदान'' में भी किया गया है।

ढाढ़ी :– ढाढ़ी जाति ढोली जाति से मिलता जुलता वर्ग है। इनका पेशा भी गाने–बजाने का ही रहा है। अन्तर यही है कि ढोली, ढोल बजाते हैं तथा ढांढ़ी, सारंगी या रबाब बजाते हैं। ढाढ़ी हिन्दू व मुसलमान दोनों होते हैं। इनकी उत्पत्ति राजपूतों से मानी जाती है। वैसे तो मुस्लिम ढाढ़ी भी हिन्दू रीति–रिवाज ही अपनाते है। मध्यकाल में ये लोग युद्ध भूमि में वीरों को उत्साहित करने के लिए गाते–बजाते थे।

भोपा :– बीकानेर में माताजी, गोगाजी, भैरूजी, पाबूजी, रामदेव जी आदि लोक देवताओं के भक्त भोपे कहलाते हैं। ये भोपे अपने इष्ट देवों की अराधना विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाकर एवं गीत गाकर करते हैं। इनकी स्त्रियाँ भी बहुत ऊँची आवाज में गाती है। पाबूजी के भोपे रावण हत्थे पर पाबूजी की बिड़वावली, रामदेव जी के भोपे तम्बूरा बजाते हुए, भैरूजी के भोपे कमर में बड़े–बड़े घुँघरू बाँधे रखते हैं तथा मशक का बाजा बजाते हुए, माताजी के भोपे डेरू बजाते हुए अपने–अपने इष्ट देवों के गीत गाकर सुनाते हैं। ये भोपे कई प्रकार के चमत्कारिक कौशल से प्रभावित करते हैं जैसे– जीभ को त्रिशूल से काटना, मुँह से आग के गोले निकालना आदि। ''रामदेव जी, गोगाजी, हड़बूजी तथा देवनारायण'' आदि राजपूत वीर एवं सन्त के रूप में लोकपूज्य हैं।

''साक्षात्कार से प्राप्त जानकारी के अनुसार– भंवर लाल जी स्व0 फूसा राम जी के पुत्र हैं आप पाबूजी महाराज भोपा के भक्त हैं पीढ़ी दर पीढ़ी इस परम्परा को निभा रहे हैं। आपका कहना है कि स्वयं निर्मित रावण हत्थे पर पाबूजी के भजन गाते हैं जिसमें परिवार की स्त्रियाँ तथा बच्चों की भी भागीदारी रहती है।

निष्कर्षतः – बीकानेर का लोक संगीत अत्यन्त समृद्ध रहा है। बीकानेर के लोक संस्कृति के प्रचार–प्रसार में लोक जीवी जातियों का विशेष योगदान रहा है। प्रस्तुत विषय पर शोध सम्भावनाऐं अभी भी अपेक्षित है।